प्रेम-संगीत
श्री भगवतीचरण वर्मा
BEROY

भगवतीचरण वर्मा

समर्पण

(१)

यदि यही जानता होता—
एकाकी है यह जीवन ;
खुलने ही को बँधता है
यह दो हृदयों का बन्धन ;
मैं सच कहता हूँ, तुमसे,
सूनेपनमें मिल जाता
पल-भरका सुख लाया था
जो यौवनका पागलपन !

(२)

उस दिन जब तुम हँस दी थीं
मेरे प्राणों को छूकर ;
हँस दी भूली-सी वसुधा,
हँस पड़ा भ्रमित-सा अम्बर ;
मैं सच कहता हूँ तुमसे,
वरदान मिला था भ्रमका
मेरे रोनेके युगमें
वह हँस देनेका पल-भर !

(३)

है अन्धकार गत - आगत
अस्तित्व स्वयम अँधियाला ;
धुँधली असफलताओंकी
संसृति पहिने जयमाला ;
मैं सच कहता हूँ तुमसे,
है कसक रहा मानसमें
उज्वल प्रकाश आशाका
बनकर मिट जानेवाला ।

(४)

अपना विश्वास लुटाती
नूपुरके रुनझुन स्वरमें ;
जो तनमयता लाई थीं
तुम अपनी मति मन्थरमें ;
मैं सच कहता हूँ तुमसे,
बनकर उद्भ्रान्त पहेली
भरती है आज हिलोरें
मेरे सूने अन्तरमें ।

(५)

पागलपनकी कुछ बातें,
पागलपनके ये कुछ क्षण ;
जिनमें रस है, विस्मृति है,
जिनमें कविका आकर्षण ;
मैं सच कहता हूँ तुमसे,
उपहार मिला था मुझको
जीवनकी उन भूलोंका
है तुमको आज समर्पण ।

भूमिका

साहित्यके यद्यपि अनेक आवश्यक और उपयोगी अंग हैं ; किन्तु काव्य उसकी आत्मा है। संसारकी प्रायः सभी भाषाओंके साहित्यमें काव्यकी प्रधानता पाई जाती है। उसके प्रसादसे साहित्यमें अमरत्व पाया जाता है और उसके महत्त्वसे साहित्यकी परख होती है। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि मानव-हृदयकी संकीर्णता अथवा विशालताको जैसी सुन्दरता और स्पष्टताके साथ काव्य प्रतिविम्बित करता है, वैसा साहित्यका कोई भी अंग नहीं करता। मनुष्यका मस्तिष्क, उसका ज्ञान और बुद्धि सभी प्रायः सीमाबद्ध हैं ; किन्तु उसका हृदय और उसकी कल्पना उतनी जकड़ी हुई नहीं है। सीमाबद्ध होते हुए भी उनके सहारे मनुष्य असीम तकका अनुभव कर सकता है। हृदयकी भावुकता और कल्पनाकी शक्ति मिलकर जब मनोहर शब्दावरण धारण करती है, तब काव्यकी सृष्टि हो जाती है। इसी कारण सम्भवतः उसे लोकोत्तरानन्द कहा है।

साहित्यिकोंने काव्यको अनेक अंगोंमें विभाजित करनेकी चेष्टा की है। यह विभाजन वस्तुतः उसके बाहरी रूपका है, न कि उसके गुणों या लक्षणोंका। बाह्यदृष्टिसे कविताके गद्यमय अथवा पद्यमय अनेक रूप हो सकते हैं ; किन्तु आन्तरिक दृष्टिसे उसकी आत्मा, उसके गुण और उसके लक्षण एक-से हैं। नाम और रूपके बाहुल्यके अन्तस्तलमें एकताकी अमिट ज्योति पाई जाती है। सम्भव है कि इसी गुणके कारण उसको ब्रह्मानन्द-सहोदर माना गया है।

काव्यका उद्गम भाव है। भावमें जितनी व्यापकता, क्षमता और तीक्ष्णता होती है, उतनी ही विशदता, शक्ति और प्रखरता काव्यमें होती है। यद्यपि प्रत्येक प्राणीमें भावुकता होती है, जो वह किसी-न-किसी प्रकार अवसर आनेपर प्रकट कर ही देता है ; किन्तु परिष्कृत मार्जित और संस्कृत शब्दावली और पदावलीसे सुसज्जित होनेपर उसकी छटा बहुत बढ़ जाती है, उसमें नये जीवनका संचार हो जाता है और उसका आकर्षण और प्रभाव बढ़ जाता है। मानव-हृदय यदि भावोंके छाया-चित्रोंके लेनेका दैविक यन्त्र है, तो उनको प्रतिविम्बित (Project) करनेका यन्त्र भाषा है। दोनों यन्त्रोंकी अच्छाई, उनके कुशल प्रयोगोंपर कोमल भावोंके सुकोमल छाया-चित्रोंकी सार्थकता और सफलता अवलम्बित है।

भावुकता दो प्रकारकी मानी गई है—एक तो केन्द्रित और दूसरी व्यापक। पहली एकमुखी और दूसरी बहुमुखी होती है। केन्द्रित भावुकताका एक विशेष दृष्टिकोण होता है; किन्तु दूसरीके अनेक दृष्टिकोण होते हैं। पहली विश्वको अपने ढाँचेमें ढालनेकी चेष्टा करती है; किन्तु दूसरी विश्वको अपनेमें तन्मय करनेकी कोशिश करती है। एक स्वरपर मुग्ध होती है, तो दूसरी पूरा सप्तक समाप्त करनेके लिए लालायित रहती है। केन्द्रित भावुकता एक कवित्वका गान करती है; किन्तु व्यापक भावुकता अनेक गानोंका समन्वय करती है।

उपर्युक्त सिद्धान्तोंके अनुसार कवियों और काव्योंको भी दो श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है। पहली श्रेणी तो उन कवियोंकी है, जो अपने अनुभवोंके चित्रणमें दत्तचित्त हैं, अथवा जो एक विशेष प्रकारके अनुभवोंका साधन करते हैं। दूसरी श्रेणीमें वे कवि हैं, जो अनेक प्रकारके अनुभवोंकी क्षमता रखते हैं और 'महा-मायावी'के समान 'रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव' के सिद्धान्तका समर्थन करते हैं। दोनों शक्तियाँ दैविक हैं। यद्यपि दूसरी श्रेणीवालोंमें पहली श्रेणीके गुण किसी-न-किसी अंशमें होते हैं; किन्तु पहली श्रेणीवालोंमें दूसरी श्रेणीके गुणोंका ऐश्वर्य नहीं पाया जाता। यद्यपि बिन्दुओंसे वृत्तकी रचना होती है; किन्तु बिन्दु वृत्त नहीं कहा जा सकता।

बिन्दु और वृत्तके उदाहरणसे यह न समझना चाहिए कि बिन्दु अगणनीय सत्ता है। अपनी परिधिमें वह पूर्ण है। देश और कालकी दृष्टिसे वह वृत्तका एक छोटा-सा अंग कहा जाता है, किन्तु उनसे मुक्त होनेपर वह सूक्ष्मरूपेण पूर्णता का प्रतिबिम्ब हो जाता है। उसमें 'अणोः अणीयान्'का गौरव गर्भित रहता है। इस धारणाके अनुकूल केन्द्रित अथवा एक-देशिय भावुकता अपना विशेष महत्त्व रखती है। इस श्रेणीका कवि 'रासायनिक' की तरह ताँबेको सोना बनानेकी चेष्टा करता है। विपुल, विस्तृत सृष्टि-समूहको वह अपना व्यक्तित्व प्रदान करके उसमें एकता संचार करता है।

हमारे देशके प्राचीन साहित्यमें 'गीति-काव्य' (Lyric) की कोई विशेष श्रेणी नहीं मानी गई है। साधारणतः गीति-काव्य (Lyric) उस प्रकारकी कविता कहलाती है, जो गाई जा सके। किन्तु हमारे साहित्यमें काव्यका संगीतके साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध रहा है कि 'लिरिक'की कोई विशेष श्रेणी माननेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी। वेद और रामायण आदिका उसी प्रकार गान होता था, जैसा कि

'गीतगोविन्द'का। इसी प्रकार हिन्दीमें भी चौपाइयाँ, दोहे, कवित्त, सवैया आदि विविध स्वरों और लयोंमें गाये जाते हैं। अतएव यूनानवालोंकी 'लिरिक'की परिभाषा हमारे काव्यपर लागू नहीं होती।

'लिरिक'की दूसरी परिभाषा यह मानी गई है कि उसमें व्यक्ति अथवा पात्र-विशेषके अपने अनुभव तथा उद्गार ओज अथवा प्रसादपूर्ण भाषामें प्रकट किये जाते हैं। जब भावोंके आवेशसे प्रेरित होकर कोई व्यक्ति अपने निजी उद्गारोंको काव्योचित भाषामें बद्ध करता है, तब 'लिरिक'की सृष्टि हो जाती है। यह आवश्यक नहीं कि वे भाव स्वयं कविके ही हों, वे कवि-निर्मित किसी पात्रके हो सकते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि सजीव भाषामें व्यक्तिके व्यक्तित्व और उसके आन्तरिक भावोंका साक्षात् करानेकी क्षमता 'लिरिक'की विशेषता है। वर्णनात्मक अथवा प्रबन्धात्मक काव्य, नाटक, प्रहसन अथवा चम्पूसे 'लिरिक' विभिन्न है। प्रायः वह पद्यमय होता है; किन्तु गद्यमें भी उसका होना सम्भव है।

व्यक्तित्व, आवेश, भावुकता अधिक मात्रामें होनेके कारण 'लिरिक'में भावोद्रेककी शक्ति भी अधिक होती है। उसमें प्रभाव और सहानुभूति पैदा करनेकी भी अधिक क्षमता होती है। मनुष्यके सुख, दुख, राग, द्वेष, काम, उसकी आशा और निराशा आदिका साक्षात् 'लिरिक' सुगमता, तीव्रता और मनोहरताके साथ कराता है। यह उसकी मुख्य विशेषता है।

हिन्दीका 'पद्य-साहित्य' तो 'लिरिक' है ही; किन्तु साधारणतः मुक्तक छन्द, दोहा, कवित्त और सवैया भी उसके अन्तर्गत आ जाते हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि हिन्दीका अधिकांश साहित्य 'लिरिक' (गीति-काव्य) है। हिन्दी-साहित्य-संसारके सुकवियोंकी प्रतिभा प्रायः गीतों और मुक्तकोंके रूपमें प्रस्फुटित हुई है। वास्तविक प्रबन्ध-काव्य हिन्दीमें थोड़े-से हैं। महाकवि सूरदास आदि कुछ कवियोंने प्रबन्ध-काव्यको 'लिरिक'का लावण्य देनेका प्रयत्न किया; किन्तु उस ओर अधिक सफलता नहीं हो सकी। तथापि यह प्रयत्न अपने ढंगका अपूर्व है, और व्रजभाषाके कवि अभी तक उससे हताश नहीं हुए। आधुनिक युगमें कई कवियोंने उस ओर ध्यान दिया है, और कुछ सफलता भी होने लगी है।

लिरिक-रूपमें प्रबन्ध-काव्य करनेका प्रयास सम्भवतः इसलिए दुस्तर है कि दोनोंके लक्षण, गुण और भावावेश विभिन्न हैं। दोनोंके लिए मानसिक और काल्पनिक शक्तियाँ, अनुभूतियाँ और विभूतियाँ एक-सी नहीं। सम्भव है कि महात्मा

तुलसीदासकी तरह कुछ व्यक्तियोंमें दोनों प्रकारकी क्षमता विद्यमान हो ; किन्तु ऐसे भाग्यशाली जन विरले ही होते हैं। साधारणतः उनका सम्मिश्रण एक ही जगह बहुत कम होता है, और यदि होता भी है, तो लिरिक और प्रबन्ध-काव्यके रूप, रंग और रसोंका सुन्दरता और सफलताके साथ परिणय करना साहस और कठिनताका कार्य अवश्य है। किन्तु कौन कह सकता है कि भविष्यमें इस कार्यको कुशलतासे सम्पादन करनेवाला कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा न होगा ?

व्रजभाषाके कवियोंके समान हिन्दी भी प्रबन्ध-काव्य रचनेवालोंकी संख्या बहुत कम है। लिरिक रचनाएँ करनेवालोंकी संख्या अधिक है और बढ़ती जा रही है। लिरिक रचनेवालोंमें पंतजी, प्रसादजी, निरालाजी, राजकुमार वर्माजी, बच्चनजी, पद्मकान्तजी, श्री महादेवी, श्री तारादेवी आदि अनेक कवि और कवियित्रियाँ हैं। इनकी मनोहर रचनाओंसे आधुनिक खड़ी बोलीका काव्य श्रीसम्पन्न हो रहा है। किन्तु प्रबन्ध-काव्य रचनेवालोंमें उपाध्यायजी, गुप्तजी, गुरुभक्त सिंहजी, रामनरेश त्रिपाठीजी, प्रसादजी आदि गिने-चुने थोड़े ही से सुकवि हैं। यदि साहित्यके गौरवपूर्ण और सापेक्ष अधिक स्थायी अंगकी ओर अधिक ध्यान दिया जाय तो अच्छा होगा।

आधुनिक युगमें व्रजभाषावालोंकी तरह खड़ी बोलीके सुकवियोंको भी वैसी ही कठिनाइयोंका सामना करना पड़ रहा है। खड़ी बोलीमें मैथिलीशरणजी आदिने प्रबन्ध-काव्य रचनेमें और सुमित्रानन्दनजी आदि सुकवियोंने गीति-काव्य रचनेमें स्तुत्य सफलता प्राप्त की है। सूरदास आदिकी तरह जयशंकर प्रसादने अपने नवीनतम काव्य 'कामायिनी'में दोनोंके सम्मिश्रण करनेका भगीरथ प्रयत्न किया है, और इसमें उनको कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है। खड़ी बोलीमें कुछ प्रबन्ध-काव्य अच्छे बन गये हैं। लिरिक-रचनामें अच्छी सफलता प्राप्त हुई है, किन्तु दोनोंके संयोजनमें उतनी सफलता नहीं मिली।

प्रस्तुत गीत-मालिका श्री भगवतीचरणजी वर्माकी गूँथी हुई है। वर्माजी पुराने विदग्ध कलाविलासी हैं। आप कहानियाँ और समीचीन उपन्यास भी लिखते हैं। आपके पहले उपन्यास 'चित्रलेखा'का अच्छा स्वागत हुआ ; किन्तु दूसरे उपन्यास 'तीन वर्ष' की रचनामें आपको बहुत सफलता प्राप्त हुई। उसकी बड़ी सहानुभूति-पूर्ण और प्रशंसापूर्ण आलोचनाएँ विद्वानोंने की हैं। आपकी कहानियोंके संग्रह 'इन्स्टालमेन्ट'का भी हिन्दीमें अच्छा सम्मान हुआ है।

कहानी और उपन्यास तो आप लिखते ही हैं ; किन्तु आप बड़ी ही ओजपूर्ण, मर्मस्पर्शी तथा भावपूर्ण कविता करते हैं। लिरिक लिखनेवालोंमें आपका स्थान ऊँचा है। जब आप अपने अतुलनीय ढंगपर अपनी कविता पढ़ते हैं, तब एक प्रकारका आवेश और हृदयोन्मेष पैदा हो जाता है, श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। यद्यपि आपके पढ़नेका ढंग अनूठा है ; किन्तु आपकी सफलताका वास्तविक कारण आपकी भावान्दोलन और आत्मप्रस्फुरण करनेवाली कविता है। छापेकी चोटसे स्तब्ध होकर भी वह सजीवता और सुन्दरतासे दीप्तमान रहती है।

आपकी कविताओंका पहला संकलन 'मधुकण' नामसे प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत गीत-संग्रह दूसरा संकलन है। यद्यपि आपने अन्य विषयक अनेक लिरिक लिखे हैं ; किन्तु इसमें आपके प्रेम-गीतोंका ही संग्रह है।

वर्माजीके प्रेम-सम्बन्धी विचार भी अपना दृष्टिकोण रखते हैं। फ़ारसी और उर्दूकी इश्क़-सम्बन्धी विचार-धारासे आपकी कल्पना प्रभावित है, और उसमें सूफ़िक और नवीन वेदान्तकी पुट है, जिससे उसमें एक विशेष चमक पैदा हो गई है। यद्यपि प्रेमको आप शायद क्षणभंगुरताशील समझते हैं, तथापि उसे मोहक, मादक और लोकोत्तरानन्ददायक अनुभव करते हैं। आपका विचार-केन्द्र वैराग्यमूलक प्रतीत होता है। आप जीवनको शून्यता और असफलतामय समझते हैं। आप कहते हैं कि प्रेम-मूर्त्तिके साक्षातसे :—

भरे हुए सूनेपन के तम
में विद्युत् की रेखा - सी
असफलता के पट पर अंकित
तुम आशा की लेखा - सी
... ...
... ...
जब कि मिट रहा था मैं तिल-तिल
सीमा का अपवाद लिए।

अथवा

मेरे सूने - से जग में
तुम वैभव के स्पन्दन-सी।

यही नहीं, आपके जीवनमें विद्रोहकी ज्वाल-माला है, जो अपनी तीव्रताके कारण जीवनको क्षीण कर रही है। उसकी क्षीणताको प्रबल करने अथवा उसको सह्य बनानेके लिए अपनी प्रेम-मूर्ति और प्रेमानुभवका आह्वान करते हैं। देखिये :—

विद्रोह - भरे जीवन में
तुम महाशक्ति बन जाओ
मेरे पतझड़ की झंझा
मेरे पतझड़ में आओ

प्रेम आपकी धारणामें आह्लाद-प्रदायिनी घटना है ; एक प्रकारकी रस-धारा है, जो तृष्णा बढ़ाकर बन्द हो जाती है ; एक बिजली-सी है, जो सहसा कौंधकर मनुष्य के जीवनमें प्रकाश फैलाती है और फिर विलीन हो जाती है।

तुम हँसती - हँसती आई हो
हँसने और हँसाने को
मैं बैठा हूँ पाने को फिर
पा करके छुट जाने को

× × ×

पल-भर जीवन, फिर सूनापन
पल-भर तो लो हँस-बोल प्रिये
कर लो निज प्यासे अधरों से
प्यासे अधरों का मेल प्रिये

× × ×

खोए देता हूँ आज तुम्हें
मैं एक कसककी याद लिए

प्रेमके आनेमें अपूर्व प्रस्फुरण होता है, जो अत्यन्त मुग्धकारी, रोमांचकारी है, जो स्वप्नके सुनहरे संसारकी सृष्टि करके ज्ञान और धैर्यकी मर्यादाको ढीला कर देता है :—

आज ढीले पड़ रहे हैं
ज्ञान के विकराल बन्धन
आज सपनों की अवलियाँ
आँसुओं के तार में बिंध
प्रेम की जय - माल बनकर
रच रहीं सुकुमार सिहरन

× × ×

मैं काँप उठा बेसुध - सा
छुट पड़ा भूमि पर प्याला
चितवनने देवि, तुम्हारी
यह चूर - चूर कर डाला

किन्तु फिर भी कवि प्रेमका पल्ला पकड़कर चलनेको ही अपना ध्येय समझता है। वह भूल जाता है कि प्रेम साध्य है या साधन है, और उसे इस बातकी कुछ भी चिन्ता नहीं है कि वह उसे किधर ले जायगा। प्रेमके क्रोड़में वह आनन्द-विभोर होकर तल्लीन हो जाता है :—

तुम कल्याणी हो, शक्ति बनो
तोड़ो भवका भ्रमजाल यहाँ
बहना है, बस बह चलो अरे
है व्यर्थ पूछना—किधर? कहाँ?

इतना भ्रामक विभ्रम होते हुए भी कविको इतना ज्ञान अवश्य है :—

है हमें बहाने को आई
यह रसकी एक हिलोर प्रिये
शाश्वत असीममें चलना है
निज सीमाके उस ओर प्रिये
उस ओर जहाँ उन्मत्त प्रणय
है लोक · लाजको छोड़ चुका
उस ओर जहाँ स्वच्छन्द समय
सुध - बुधके बन्धन तोड़ चुका

बस, यही उस लोकका पता है। किन्तु अन्ततोगत्वा परिणाम अनिश्चित है, जैसा कि कवि कहता है :—

ढक ले पृथ्वी, ढक ले अम्बर
जीवनका मुक्त प्रवाह प्रिये
तुम अक्षय छवि, मैं अमिट साध
यह अन्धकार है चाह प्रिये
× × ×
कुछ मान-भरी, कुछ भ्रमित-चकित
करती है अभिलाषा नर्तन
रचकर अपना असीम उसमें
लय होता जाता है जीवन
× × ×

ऐ मुझे मिटानेवाली
मिटकर मिटने को भूलो

× × ×

है प्रेम भूल सपने की
उस सुख-सपने को भूलो

× × ×

मिटना बननेके साथ लगा
जीवन है एक अभाव यहाँ

× × ×

मैं करके पीड़ाको विलीन
पीड़ामें स्वयम् विलीन हुआ

प्रेमको इतना आनन्दप्रद अनुभव करनेपर भी उसमें कविकी आस्था संदिग्ध-सी है :–

जिसको समझा था प्यार वही
अधिकार बना पागलपन का

× × ×

सुखकी तन्मयता तुम्हें मिली
पीड़ा का मिला प्रमाद मुझे

× × ×

निज अस्तित्व बना रक्खा था
उस पल-भर के सपने को

प्रेम-विनिर्मित आशाओं और स्वप्नोंका संसार कविकी दृष्टिमें विनशनशील है। अन्ततोगत्वा यह सब भयंकर भूल-सी है :—

जीवनका अभिशाप लिए हूँ
पाप लिए हूँ यौवन का
और पहन रक्खी है मैंने
असफलता की जयमाला

हमारे कविकी अनुभूतिके अनुसार प्रेम एक मीठी पीड़ा, एक सुनहरा सपना है, जो जीवनमें कुछ कालके लिए एक रस और आनन्दमय कल्लोल करता है; किन्तु सीमाकी चट्टानोंसे टकराकर, गौरवके गुरु भारसे दबकर, लज्जाकी उष्णतासे झुलसकर

जीवनकी कठोर सत्तासे मूर्छित होकर, मार्गकी कठिनतासे थककर और विधिके विधानसे बिंधकर धूम्रकेतुकी तरह जीवनकी तिमिराग्रस्त निशाके अंचलपर देदीप्यमान रेखा खींचकर उसीमें विलीन हो जाता है। असीमके एक ओरसे चमककर असीमके दूसरे छोरमें लय हो जाता है। प्रेमकी सफलता असीम और शाश्वत लोकमें ही हो सकती है ; किन्तु वहाँ तक पहुँचनेके पहले ही प्रेमका प्रलय हो जाता है।

जीवनके सूनेपन, उसकी असारता, उससे प्रसूत पीड़ासे कवि व्याकुल, व्यथित और हताश-सा हो गया है। उसके इस निराशापूर्ण जगतमें प्रेम-मूर्ति ही एक जाग्रत शक्ति-सी भाषित होती है ; किन्तु वह भी चञ्चल और अस्थायी है। ऐसी दशामें मिट जाना ही अन्तिम गति है। जीवन और प्रेमकी शाश्वत सत्ता, उनकी सारपूर्ण महत्ता, उनके अविनाशी वैभव और सत्यतामें, उनके ईश्वर-प्रसूत वैभवमें विश्वास हमारे पुरातन साहित्यमें ओत-प्रोत था ; क्योंकि उस समय आस्तिकवादका वातावरण था। किन्तु नूतन साहित्यमें उनपरसे श्रद्धा और विश्वासका ह्रास हो रहा है, इसीलिए शायद नवीन कविता विद्रोहात्मक और अशान्ति-मूलक मानी जाती है।

इस प्रकारकी पीड़ात्मक और प्रेम-कल्पना, जिसका परिणाम नाश या मिट जाना है हमारी उस कल्पनासे जो आनन्दमय और अक्षयानन्द प्रदान करनेवाली है, विभिन्न है। दृष्टिकोण, अनुभूति और आदर्शकी यह विभिन्नता भारतीय संस्कृतिकी कल्पनाको फारसी और तत्प्रभावित कल्पनासे पृथक करती है। सुन्दर, सत्य और शिवका साधन दोनों कल्पनाओंसे कहाँ तक होता है, यह विचारणीय है। शिव और नटराजकी वास्तविक एकता होते हुए भी उन दोनोंकी लीलाओंका परिणाम भिन्न है। जोड़ और घटानेकी अनत सीमा एक होते हुए भी दोनोंके फल-प्राप्तिमें बड़ा भारी भेद है। वस्तुतः सब माया दृष्टिकोणकी है। हमारी आर्य-संस्कृतिने अपना दृष्टिकोण कई शताब्दियों तक रखा, जिसके गुण और अवगुण, सत्यता और मायिकताकी परीक्षा कालकी कसौटीपर हो चुकी है। हिन्दी-साहित्यमें नये दृष्टिकोणका आना उसके बहुमुखी होने, उदार होने एवं उसकी व्यापक शक्तिका प्रत्यक्ष प्रमाण दे रहा है। किन्तु अभी यह नहीं कहा जा सकता है कि इसकी क्षमता और लौकिक एवं पारलौकिक जीवनसे इसका कहाँ तक सामंजस्य हो सकता है। अतएव आनन्द और आत्म-वैभवका इससे कहाँ तक साधन हो सकता है और अक्षयत्व, अमरत्व प्रदान करनेकी इसमें कितनी शक्ति है। इन्हीं प्रश्नोंके

उत्तरपर इस दृष्टिकोणका भविष्य अवलम्बित है। इसको हिन्दू-साहित्यिक जनताके सामने सोलहवीं सदीके मुसलमान कवियोंने रखा था, अठारहवीं सदीमें हिन्दू कवि घनानन्दने भी उसे उत्तेजित किया ; किन्तु इसका हिन्दी-साहित्यमें कभी सिक्का नहीं जमने पाया। अब बीसवीं शताब्दीके कुछ कवियोंने इसको पुनर्जीवित, संस्कृत और पुष्ट करनेका संकल्प किया है। इस पुरुषार्थका परिणाम भविष्यके गर्भमें है। भविष्यवाणीका साहस इन पंक्तियोंके लेखकके अंशमें नहीं है।

किन्तु क्या यह आवश्यक है कि साहित्य-प्रेमी शंका-समाधान और वाद-विवादके भ्रमजालमें इतना फँस जाय कि वह प्रेम-पीड़ाके माधुर्यसे, हृदयकी विह्लता, आत्मिक प्रस्फुरण और भावुकताके स्पन्दनसे वंचित रह जाय ? भूत और भविष्यकी चिन्ता क्या उसको वर्तमान काव्य-कला-विलाससे आनन्द-संचय करनेके अयोग्य बना देगी ? आशा है कि ऐसी भयंकर परिस्थिति उपस्थित न होगी और काव्यकी इस धारासे साहित्य-क्षेत्रका यथासम्भव सदा सिंचन होता रहेगा। उसमें जो स्थायी गुण हैं, वे स्वयं प्रकट और प्रबुद्ध हो जायँगे। नहीं तो कम-से-कम इस स्वर-लहरीको भी अपने अन्तर्गत करके काव्य-सरिता आनन्द और रसके सागरकी ओर बढ़ती चली जायगी। फूलोंका रूप-रस बनता ही बिगड़ता रहता है ; किन्तु मधु उससे विचलित नहीं होता। मधुपान करना ही वह अपने जीवनकी सार्थकता समझता है। उसी प्रकार मधुमाखी मधु-संचयमें अपनेको कृतार्थ मानती है। इदमित्थम् आदिके चक्को छोड़कर यदि वर्माजीके गानोंको भावुकताके कानोंसे सुना जाय और सहृदयतासे हृदयंगम होने दिया जाय, तो इसमें सन्देह नहीं कि वह मर्मस्पर्शी एवं भावोद्रेक करनेवाले और उल्लास, अनुराग और वैराग्यवर्द्धक भी सिद्ध होंगे। आशा है कि हिन्दी संसार उनके गीतोंका स्वागत करेगा।

इतिहास-विभाग
विश्वविद्यालय, प्रयाग
३०-३-३७

—रामप्रसाद त्रिपाठी

दो शब्द

मुझे 'प्रेम-संगीत'की कविताओंके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहना, क्योंकि वे आपके सामने है, और मैं समझता हूँ कि उनमें स्वयं इतनी क्षमता है कि मेरी सहाययाकी उन्हें आवश्यकता नहीं पड़ेगी। हाँ, अपने कलाके दृष्टिकोणके, अपने विचारोंके तथा हिन्दीके आलोचकोंके सम्बन्धमें कुछ थोड़ा-सा कह देना अनुचित न होगा।

अविश्वास और मानसिक विकासके इस युगमें जन्म लेनेके कारण मेरे पास आत्म-विश्वासके सिवा कोई विश्वास नहीं। दुनियाके जितने वाद तथा जितनी परम्पराएँ हैं, न तो मुझे उनमें स्थान मिल सकता है और न स्थान पानेकी मुझमें कोई लालसा ही है। आलोचकोंको मेरे सम्बन्धमें कठिनाईका सामना करना पड़ा है, और इस कठिनाईको उन्होंने अपनी सामर्थ्य-भर विविध प्रकारसे हल करनेकी कोशिश भी की है। कुछ लोगोंने मुझमें निराशा देखी, कुछने जीवनकी निःसारता देखी, कुछने झुलसा देनेवाली आग देखी और कुछने प्रलापकी अनर्गलता देखी। पर जो-कुछ वास्तवमें है, वह कोई न देख सका, और यदि देख भी सका, तो वहाँ तक पहुँच न होनेके कारण ठीक तरहसे समझ नहीं सका। वादोंके बन्धनमें जकड़े हुए हिन्दीके अशिक्षित तथा अर्द्ध-शिक्षित आलोचकगण अभी युगके बहुत पीछे पड़े हुए हैं। बिना दिमागके, अध्ययनके और समझके अंगरेजी कवियोंकी दुहाई देते हुए—और उसपर तुर्रा यह कि अंगरेजी कभी पढ़ी नहीं, केवल दो-चार शब्द इधर-उधर सुन भागे हैं—प्रशंसा कर देना, शैलीकार बन जाना तथा किताबें लिख देना; यह हिन्दीका समालोचना-क्षेत्र है।

मेरा एक निजी दृष्टिकोण है, और मेरा वह दृष्टिकोण मेरी उन कविताओंमें मिलेगा, जिन्हें हम विचारात्मक (Reflective) कह सकते हैं। उन कविताओंमें भावनाएँ अवश्य हैं; पर वे भावनाएँ बुद्धिसे परिपुष्ट हैं, तर्कपर अवलम्बित हैं।

'प्रेम-संगीत'की कविताएँ पढ़कर यदि कोई मेरे दृष्टिकोणको समझनेकी कोशिश करेगा, तो उसे किन्हीं कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा। 'प्रेम-संगीत' भावना-प्रधान है। उसकी कविताओंमें विशुध तन्मयता है और भावोंकी क्रियाएँ तथा प्रतिक्रियाएँ समभावसे प्रदर्शित हैं। वह एक भावनाओंका और केवल भावनाओंका अनुभव है, जहाँ बुद्धिका संयम तथा तर्ककी प्रखरता नहीं मिलेगी; उसमें कल्पनाकी मादकता-भर है। ऐसी हालतमें पुस्तक-भरमें क्रिया और प्रतिक्रियाके रूपमें परस्पर-विरोधी बातें फैली हुई हैं। प्रेमी प्रेमको वरदान समझता है, निराश प्रेमी उसी प्रेमको अभिशाप समझता है। ऐसी हालतमें पुस्तक पढ़कर यदि कोई मुझे निराशावादी अथवा आशावादी कह दे, तो वह बहुत बड़ी ग़लती करेगा; पर साथ ही यदि कोई ध्यानसे पूरी पुस्तक पढ़े, तो उसे मेरा दृष्टिकोण अवश्य ही मिल जायगा--थोड़ा धुँधला-सा और अस्पष्ट।

मैं समझता हूँ कि जीवन एक गति है, और इसीलिए संसारमें कोई चीज़ स्थायी नहीं है। यहाँ कुछ भी निरपेक्ष अथवा (adsolute) नहीं है। प्रत्येक भावना--प्रेम, घृणा आदि—बनती है और बिगड़ती है। फिर बनना और फिर बिगड़ना—यही संस्कृतिकी गति है, उसका नियम है। गति ही जीवन है और गतिहीनता ही मृत्यु है।

संक्षेपमें यह मेरा दृष्टिकोण है। अब कलापर भी थोड़े-से विचार प्रकट कर दूँ। कलाको मैंने सदा कृत्रिम माना है, वह अपनी भावनाओंका व्यक्तीकरण है। मैंने एक दृश्य देखा और मुझमें एक भावना उठी, जो मेरी निजी है; क्योंकि उस भावनाका मेरे व्यक्तित्वसे सम्बन्ध है। मैं चाहता हूँ कि वही भावना मैं दुनियाके अन्य लोगों तक पहुँचा दूँ; थोड़ी देरके लिए मैं दुनियाको अपनी तन्मयतामें तन्मय कर दूँ। जिस समय मैंने संकेत द्वारा उस भावनाको व्यक्त करना चाहा, उस समय मैंने नृत्य-कलाको जन्म दिया। जिस समय मैंने स्वर द्वारा उसे व्यक्त किया, मैंने संगीत-कलाको जन्म दिया। रंगों द्वारा उसी भावनाको प्रकट करनेकी कोशिश करना चित्र-कलाको जन्म देना है, और शब्दों द्वारा व्यक्त करके मैंने काव्य-कलाको जन्म दिया।

ऐसी हालतमें काव्यका मुख्य कार्य भावनाओंका व्यक्तीकरण है, और जितनी सफलताके साथ एक कवि अपनी भावनाको, उसी सम्मोहन, उसी प्रखरता और उसी प्रभावके साथ जैसी उसमें थी, दूसरेपर व्यक्त कर देता है, दूसरेको अपनेमें

तन्मय कर लेता है, वह उतना ही सफल है। छन्द, अलंकार, अन्त्यानुप्रास आदि वे साधन हैं, जिनके द्वारा कवि अपनी भावनाको प्रभावोत्पादक बनाता है। और इसीलिए मैं तो कभी भी उस काव्यको, जिसमें भाषा तथा भावकी स्पष्टता न हो, सफल काव्य माननेको तैयार नहीं, क्योंकि ऐसी हालतमें तो कलाके ध्येयकी ही हत्या हो जाती है।

कुछ लोग कहेंगे कि संकेतों द्वारा भी भावना व्यक्त की जा सकती है, और मुझे उनके कथनपर तनिक भी आपत्ति नहीं है। संकेतवाद अथवा प्रतीकवाद कुछ आलोचकों द्वारा उत्तम काव्यका लक्षण माना गया है ; पर वे संकेत भी स्पष्ट और निश्चित होने चाहिए। संकेतवाद आसान नहीं। संकेतों द्वारा बात करनेमें जिससे बात की जाय, उसकी मानसिक शक्तिका विचार रखना पड़ता है। इसलिए साहित्यमें संकेतवाद प्रचुरतासे नहीं मिलता है, और दुनियाके महान् कलाकारोंमें संकेतवादका अभाव-सा है। संकेतवादके नामपर बहुत-कुछ अनर्गल और निरर्थक लिख दिया जाता है—केवल 'संकेतवाद'की दुहाई देते हुए। अगर संकेतवादका ठीक तरहसे उपाय किया जा सके, तो वह श्लाघ्य है ; पर मुसीबत तो यह है कि संकेतवादका प्रायः सदुपयोग नहीं हुआ है, और आजकल तो उसका बुरी तरहसे दुरुपयोग हो रहा है।

आजकलके हिन्दीके कुछ आलोचक संकेतवादको ही काव्यका प्रधान लक्षण मानने लग गये हैं। यह इसलिए कि कुछ पाश्चात्य आलोचकोंने संकेतवादको साहित्यमें ऊँचा स्थान दिया है। उन पाश्चात्य साहित्यकारोंने जो संकेतवादको ऊँचा स्थान दिया था, वह इसलिए कि केवल संकेतों द्वारा भावनाको व्यक्त करनेमें एक विशेष प्रकारकी सुन्दरता आ जाती है। संकेतावादकी महत्ता स्वीकार करते हुए भी मुझे उसमें विश्वास नहीं। मैं तो सीधी-सादी बातमें पूर्ण प्रभाव भर देनेमें विश्वास करता हूँ। उन थोड़े-से इने-गिने पाश्चात्य आलोचकोंसे, जो संकेतावादका समर्थन करते हैं, मेरा बहुत बड़ा मतभेद है। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि सीधे-सादे ढंगसे बात कहकर उसको रसमय तथा पूर्ण प्रभावमय बनाना बहुत अधिक कठिन काम हैं, और यही काव्यकी सफलताकी चरम सीमा है। दुनियाका बहुमत, जिसे हिन्दीके आलोचक 'नग्नता' (जिसमें संकेतोंका अभाव हो) कहते हैं, उसीके पक्षमें रहा है।

कलामें जो कृत्रिम है—छन्द, भाषा आदि—वह कलाका शरीर है। उसका

प्राण है कविकी भावना अथवा कविका प्राण। इसलिए कविताको मैं कृत्रिम मानते हुए भी उसे भावना-प्रधान मानता हूँ। यह भावना स्वाभाविक है, और यदि कविता पढ़ते समय अस्वाभाविक गुत्थियाँ खड़ी हो जायँ, तो वह कविकी कमजोरी है।

यह मेरी कसौटी है। बहुत सम्भव है, अन्य आलोचक इस कसौटीसे सहमत न हों; पर इसकी मुझे चिन्ता नहीं। लिखता हूँ इसलिए कि लिख सकता हूँ, और यह विश्वास है कि जो-कुछ लिखता हूँ वह स्पष्ट है। अपनी भावनाको मैं पढ़नेवालेके सामने शुद्ध रूपमें, विना विकृत हुए, पहुँचा तो सकता हूँ। यही क्या कम है?

इलाहाबाद
१ मई, १९३७

—भगवतीचरण वर्मा

- १ -

तुम मृगनयनी तुम पिकबयनी
तुम छविकी परिणीता-सी।
अपनी बेसुध मादकतामें
भूली - सी भयभीता - सी।
तुम उल्लास - भरी आई हो,
तुम आई उच्छ्वास - भरी।
तुम क्या जानो मेरे उरमें
कितने युगकी प्यास भरी! १

शत-शत मधुके शत-शत सपनों
की पुलकित परछाई - सी;
मलय - विचुम्बित तुम ऊषाकी
अनुरंजित अरुणाई - सी;
तुम अभिमान-भरी आई हो
अपना नव - अनुराग लिए;
तुम क्या जानो कि मैं तप रहा
किस आशाकी आग लिए! २

भरे हुए सूनेपनके तम
में विद्युतकी रेखा - सी ;
असफलताके पटपर अंकित
तुम आशाकी लेखा - सी ;

आज हृदयमें खिच आई हो
तुम असीम उन्माद लिए ;
जब कि मिट रहा था मैं तिल-तिल
सीमाका अपवाद लिए । ३

चकित और अलसित आँखोंमें
तुम सुखका संसार लिए ;
मंथर गतिमें तुम जीवनका
गर्व भरा अधिकार लिए ;

डोल रही हो आज हाटमें
बोल प्यारके बोल यहाँ ;
मैं दीवाना निज प्राणोंसे
करने आया मोल यहाँ । ४

प्रेम-संगीत

अरुण कपोलों पर लज्जाकी
भीनी-सी मुसकान लिए ;
सुरभित श्वासोंमें यौवनके
अलसाए-से गान लिए ;

बरस पड़ी हो मेरे मरुमें
तुम सहसा रसधार बनी ;
तुममें लय होकर अभिलाषा
एक बार साकार बनी ! ५

तुम हँसती-हँसती आई हो
हँसने और हँसानेको ;
मैं बैठा हूँ पानेको फिर
पा करके लुट जानेको ;

तुम क्रीड़ाकी उत्सुकता-सी,
तुम रतिकी तनमयता-सी ;
मेरे जीवनमें तुम आओ,
तुम जीवनकी ममता-सी ! ६

- २ -

(१)

तुम लुटाती आ रही हो
कौन - सा उन्माद रंगिनि ?

आज मानस के विकम्पित
मौन में उन्मत्त मंथन ;
आज ढीले पड़ रहे हैं
ज्ञान के विकराल बंधन ;
आज सपनों की अवलियाँ
आँसुओं के तार में बिंध
प्रेम की जयमाल बनकर
रच रहीं सुकुमार सिहरन !

तुम जगाती आ रही हो
किस मिलन की याद रंगिनि ?
तुम लुटाती आ रही हो
कौन - सा उन्माद रंगिनि ?

(१)
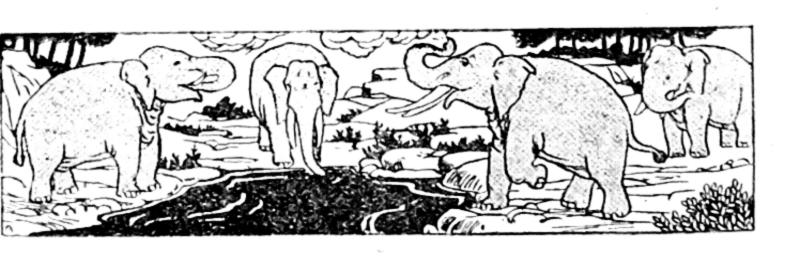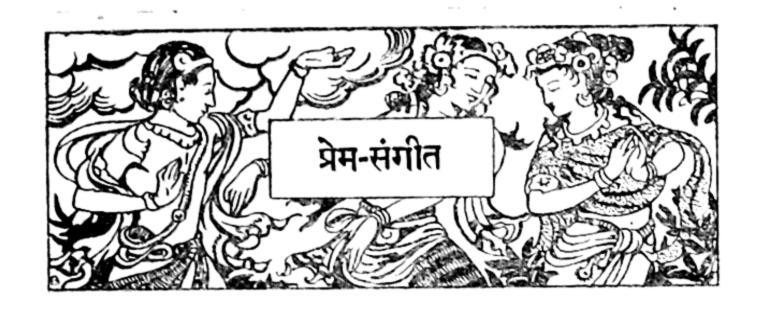
तुम बिछाती चल रही हो
कौन-सा छवि-जाल रंगिनि ?

चपल गति से लिपट सौरभ
कर रहा है विसुध नर्तन ;
नूपुरों के स्वरों में
संगीत करता चरण - चुम्बन ;
अरुण पदतल की प्रभा की
रश्मियों के तार शत - शत
बुन रहे हैं भावना से
युक्त शाश्वत, मुग्ध यौवन ।

कल्पना के सूत्र में हैं
बँध रहे दिशि-काल रंगिनी !
तुम बिछाती चल रही हो
कौन-सा छवि-जाल रंगिनी ?

(३)
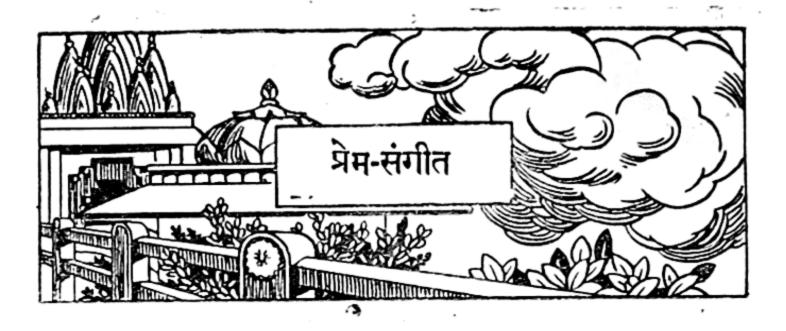
रच रहीं पद - चाप में तुम
किस प्रणय के गीत रंगिनि ?

एक पद में सिहर उठती
सुप्त युग - युग की कहानी ;
एक पद में विहँस उठती
सृष्टि की धुँधली निशानी ;
एक पद में प्रकृति कोमल
एक में तुम केलियमय रति ;
आज सहसा जग पड़ा है
पुरुष पावन, मदन मानी !

आज आगत मिट गया है,
आज लुप्त अतीत रंगिनी !
रच रहीं पद - चाप में तुम
किस प्रणयके गीत रंगिनि ?

प्रेम-संगीत

(४)

अलस नयनों में लिये हो
किस विजय का भार रंगिनि ?

झुक पड़ी मधु से विकल
पुलकित कलीने आँख खोली ;
झुक पड़ी भूली हुई - सी
आज पागल मधुप - टोली !
झुक पड़ी कोमल झुकी - सी
आम्र डाली पर कुहुक कर ;
और सौरभ - भार से झुक
कर मलय - बातास डोली ।

आज बंधन बन रहा है
प्यार का उपहार रंगिनि !
अलस नयनों में लिये हो
किस विजय का भार रंगिनि ?

- ३ -

(१)

कुछ सुन लें, कुछ अपनी कह लें।

जीवन - सरिताकी लहर - लहर
मिटनेको बनती यहाँ प्रिये!
संयोग क्षणिक!—फिर क्या जाने
हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिये?

पल-भर तो साथ-साथ बह लें;
कुछ सुन लें, कुछ अपनी कह लें।

(२)

आओ कुछ ले लें औ' दे लें।

हम हैं अजान पथके राही,
'चलना'—जीवनका सार प्रिये।
पर दुःसह है, अति दुःसह है—
एकाकीपनका भार प्रिये।

पल-भर हम-तुम मिल हँस-खेलें;
आओ कुछ ले लें औ' दे लें।

(३)

हम-तुम अपनेमें लय कर लें।

उल्लास और सुखकी निधियाँ,
बस इतना इनका मोल प्रिये।
करुणाकी कुछ नन्हीं बूँदें,
कुछ मृदुल प्यारके बोल प्रिये।

सौरभसे अपना उर भर लें;
हम-तुम अपनेमें लय कर लें।

(४)

हम-तुम जी भर खुलकर मिल लें।

जगके उपवनकी यह मधु-श्री,
सुषमाका सरस बसन्त प्रिये।
दो साँसोंमें बस जाय और
ये साँसें बनें अनन्त प्रिये।

मुरझाना है आओ खिल लें;
हम-तुम जी भर खुलकर मिल लें।

- ४ -

(१)

संकोच-भारको सह न सका
पुलकित प्राणोंका कोमल स्वर,
कह गये मौन असफलताको
प्रिय आज काँपते हुए अधर !

छिप सकी हृदयकी आग कहीं ?
छिप सका प्यारका पागलपन ?
तुम व्यर्थ लाजकी सीमामें
हो बाँध रही प्यासा जीवन ।

तुम करुणाकी जयमाल बनो,
मैं बनूँ विजयका आलिंगन ;
हम मदमातोंकी दुनियामें
बस एक प्रेमका हो बन्धन ।

(२)
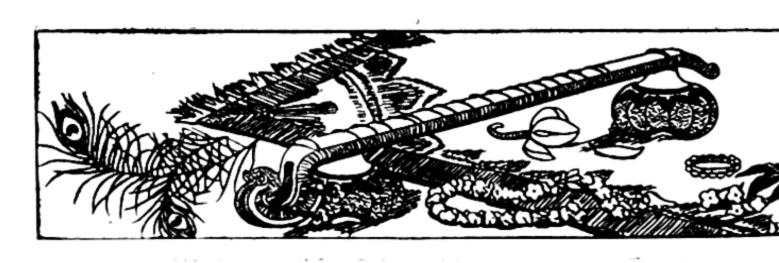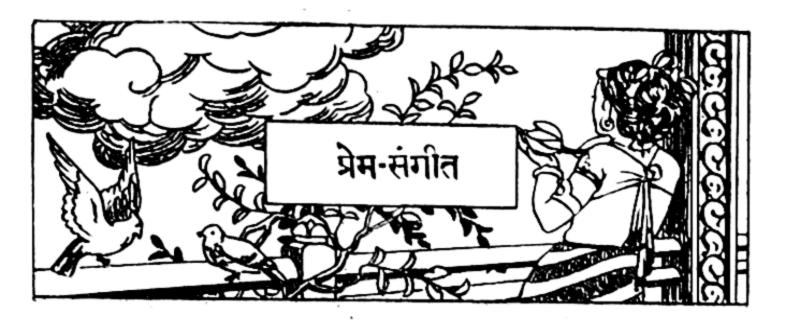
आकुल नयनोंमें झलक पड़ा
जिस उत्सुकताका चंचल जल,
कम्पन बनकर कह गई वही
तन्मयताकी बेसुध हलचल!

तुम नव-कलिका-सी सिहर उठीं
मधुकी मादकताको छूकर,
वह देखो अरुण कपोलों पर
अनुराग सिहरकर पड़ा बिखर,

तुम सुषमाकी मुसकान बनो,
अनुभूति बनू मैं अति उज्वल;
तुम मुझमें अपनी छवि देखो,
मैं तुममें निज साधना अचल!

(३)

पल-भरकी इस मधु-वेलाको
युगमें परिवर्तित तुम कर दो ;
अपना अक्षय अनुराग सुमुखि,
मेरे प्राणोंमें तुम भर दो।

तुम एक अमर सन्देश बनो
मैं मन्त्र-मुग्ध-सा मौन रहूँ ;
तुम कौतूहल-सी मुसका दो,
जब मैं सुख-दुखकी बात कहूँ।

तुम कल्याणी हो, शक्ति बनो
तोड़ो भवका भ्रम-जाल यहाँ ;
बहना है, बस बह चलो, अरे
है व्यर्थ पूछना किधर-कहाँ ?

(४)
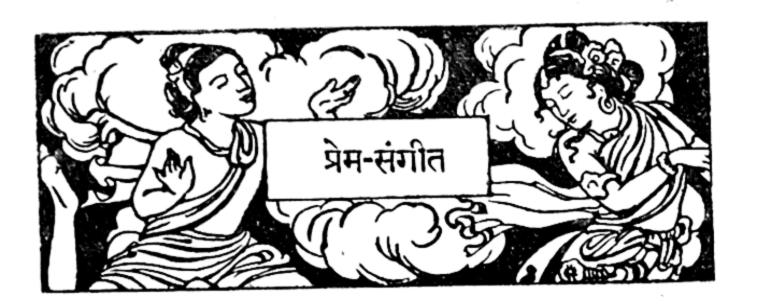
थोड़ा साहस ! इतना कह दो—
तुम प्रेम-लोककी रानी हो !
जीवनके मौन रहस्योंकी
तुम सुलझी हुई कहानी हो !

तुममें लय होनेको उत्सुक
अभिलाषा उरमें ठहरी है,
बोलो ना ! मेरे गायनकी
तुममें ही तो स्वर-लहरी है !

होठोंपर हो मुसकान तनिक
नयनोंमें कुछ-कुछ पानी हो ;
फिर धीरेसे इतना कह दो—
तुम मेरी ही दीवानी हो !

- ५ -

(१)

मेरे जीवनकी रानी !
मेरे जीवनमें आओ !
मधुऋतुकी पागल कोकिल !
मधुमें पंचम भर जाओ !
ऐ उरके मीठे सपने !
विस्मृतिके फूल लुटाओ !
उन्माद - भरी तन्मयता !
अपना आसव भर लाओ !

मैं बनूँ प्रेमका कम्पन,
तुम उसकी मधुर कहानी ;
मेरे जीवनमें आओ,
मेरे जीवनकी रानी !

(२)

कल्पना किया करती है
मेरे मानसमें क्रीड़ा,
खेला करती है निशि-दिन
प्राणोंसे मीठी पीड़ा ;
है सिसक रही युग-युगकी
प्यासी यह अभिलाषा,
हँसती रहती है उरमें
मेरी चिर-संचित आशा ।

मैं स्वयम डूबा हूँ जिसमें,
तुम वह प्रवाह बन जाओ !
मेरे सपनेकी प्रतिमा !
सपना-सी बनकर आओ !

(३)

मैं सागरका गर्जन हूँ,
तुम सरिताकी रँगरेली ;
मैं जीवनका विप्लव हूँ,
तुम उसकी मौन पहेली ;
मैं ताप बनूँ पावकका,
तुम हो प्रकाशकी माला ;
उन्माद बनूँ मैं मधुका,
तुय हो सुरभित मधुशाला।

मैं बनूँ क्रान्तिकी हलचल,
तुम करुणा दीवानी-सी ;
मैं तड़प उठूँ आँधी-सा,
तुम बरस पड़ो पानी-सी !

(४)
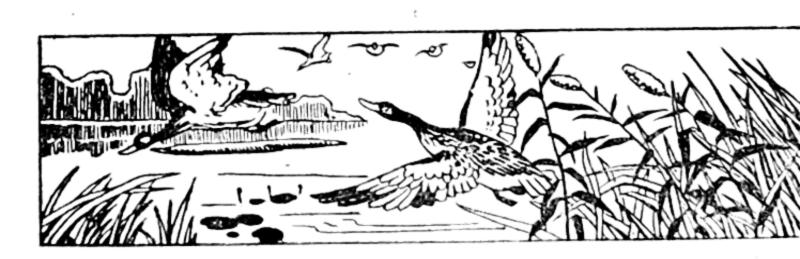
मेरी आहोंके शोलों
का ज्वालामुखी प्रबल हो;
उच्छ्वास तुम्हारा धूमिल
नभमण्डलकी हलचल हो;
मैं बनूँ नाश विच्छृङ्खल,
तुम महाप्रलय अविकल हो;
मैं बनूँ नृत्य ताण्डवका
तुम उसकी गति चंचल हो;

विद्रोह भरे जीवनमें
तुम महाशक्ति बन जाओ!
मेरे पतझड़की झंझा,
मेरे पतझड़में आओ!

(५)

मेरे सोये-से उरमें
तुम जागृतिकी कम्पन - सी,
अलसाई - सी आँखोंमें
मदिराके पागलपन - सी;
मेरे सूने - से जगमें
तुम वैभवके स्पन्दन - सी;
आओ जीवन-निधि! आओ,
जीवनमें तुम जीवन-सी;

जीवन - जलनिधिमें मेरी
तृष्णा अतृप्त बन जाओ!
मैं भूल गया हूँ निजको,
निज बनकर मुझमें आओ!

- ६ -

(१)

तुम अपनी हो, जग अपना है,
किसका किसपर अधिकार प्रिये ?
फिर दुविधाका क्या काम यहाँ ?
इस पार या कि उस पार प्रिये ।

देखो । वियोगकी शिशिर रात
आँसूका हिमजल छोड़ चली,
ज्योत्स्नाकी वह ठण्डी उसाँस
दिनका रक्तांचल छोड़ चली ;

चलना है सबको छोड़ यहाँ
अपने सुख-दुखका भार प्रिये ।
करना है कर लो आज उसे
कलपर किसका अधिकार प्रिये ।

प्रेम-संगीत

(२)

हैं आज शीतसे झुलस रहे
ये कोमल अरुण कपोल प्रिये !
अभिलाषा की मादकता से
कर लो निज छविका मोल प्रिये !

इस लेन - देन की दुनिया में
निजको देकर सुखको ले लो,
तुम एक खिलौना बनो स्वयम्
फिर जी भरकर सुखसे खेलो ;

पल - भर जीवन—फिर सूनापन
पल - भर तो लो हँस - बोल प्रिये !
कर लो निज प्यासे अधरोंसे
प्यासे अधरोंका मोल प्रिये !

(१)
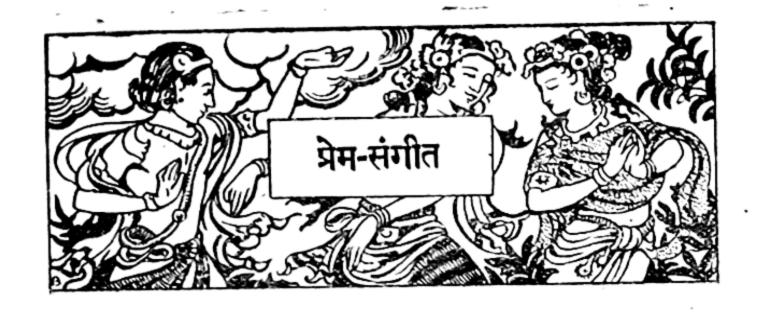
सिहरा तन, सिहरा व्याकुल मन,
सिहरा मानसका गान प्रिये !
मेरे अस्थिर जगको दे दो
तुम प्राणोंका वरदान प्रिये !

भर - भर कर सूनी निःश्वासें
देखो ! सिहरा - आ आज पवन
है ढूँढ़ रहा अविकल गतिसे
मधुसे पूरित मधुमय मधुवन ;

यौवन की इस मधुशाला में
है प्यासोंका स्थान प्रिये !
फिर किसका भय ? उन्मत्त बनो
है प्यास यहाँ वरदान प्रिये !

(४)

देखो ! प्रकाश की रेखा ने
वह तममें किया प्रवेश प्रिये !
तुम एक किरण बन, दे जाओ
नव - आशाका सन्देश प्रिये !

अनिमेष दृगों से देख रहा
हूँ आज तुम्हारी राह प्रिये !
है विकल साधना उमड़ पड़ी
होठोंपर बनकर चाह प्रिये !

मिटनेवाला है सिसक रहा
उसकी ममता है शेष प्रिये !
निजमें लयकर उसको दे दो
तुम जीवनका सन्देश प्रिये !

प्रेम-संगीत

- ७ -

(१)

मधु झलक रहा था उरमें,
मैं था सुखका दीवाना;
अलसाई - सी आँखोंमें
था झूल रहा मैखाना;
पागल - सा खेल रहा था
मैं विस्मृतिसे मनमाना;
हर रंग उमँगसे पूरित,
हर राग यहाँ मस्ताना;
उठ पड़ा दर्द - सा बनकर
—है इसको कठिन छिपाना—
मेरे सूने जीवनमें
यह देवि तुम्हारा आना!

(२)

होंठोंपर नाच रहा था
मेरे वैभव का प्याला;
मैं बना हुआ था साकी,
मैं ही था पीनेवाला;
कोई कहता था विष है,
कोई कहता था हाला;

मैं हँसता था मस्तीमें,
मेरा था रंग निराला!

मैं काँप उठा बेसुध-सा
छुट पड़ा भूमिपर प्याला;
चितवनने देवि तुम्हारी
यह चूर-चूर कर डाला!

(३)

देखा था मौन निशामें
तारोंका हँसकर आना ;
कलरवसे भरी उषामें
देखा उनका सकुचाना ;
मलयानिलके चुम्बनसे
कलियोंका खिल-खिल जाना ;

शबनमके अश्रु बहाकर
फिर फूलोंका मुरझाना ;

जीवनका और मरणका
मैं लिखता था अफ़साना ;
पर माया - सा बन आया
उन्मत्त तुम्हारा गाया !

(४)

किस मादकतासे प्रेरित
स्वर-लहरी देवि तुम्हारी ?
तुम किस सम्मोहनकी छवि ?
मैं किस भ्रमका अधिकारी ?
यह अपना-अपना सपना,
यह अपनी - अपनी बारी ;

ले चलो कर चुका हूँ मैं
अब चलनेकी तैयारी ;

मैं आज मिटा आया हूँ
सुध - बुधकी सीमा सारी,
निज सब-कुछ तुमको देकर
बन आया आज भिखारी !

- ८ -

(१)
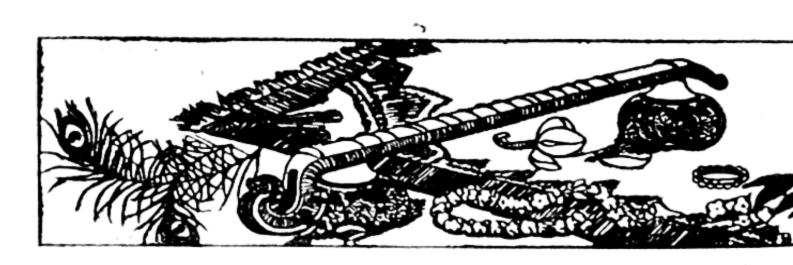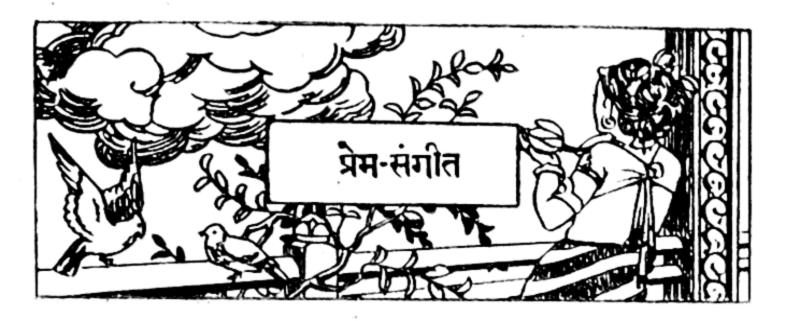
आज माधवका सुनहला प्रात है ;
आज विस्मृतिका मृदुल आघात है ;
आज अलसित और मादकता-भरे
सुखद सपनोंसे शिथिल यह गात है ;

मानिनी हँसकर हृदयको खोल दो !
आज तो तुम प्यारसे कुछ बोल दो !

(२)

आज सौरभमें भरा उच्छ्वास है ;
आज कम्पित-भ्रमित-सा बातास है ;
आज शतदलपर मुदित-सा झूलता
कर रहा अठखेलियाँ हिमहास है ;

लाजकी सीमा प्रिये, तुम तोड़ दो !
आज मिल लो, मान करना छोड़ दो !

प्रेम-संगीत

(३)

आज मधुकर कर रहा मधुपान है ;
आज कलिका दे रही रसदान है ;
आज बौरोंपर विकल बौरी हुई
कोकिला करती प्रणयका गान है ;
यह हृदयकी भेंट है, स्वीकार हो !
आज यौवनका सुमुखि, अभिसार हो !

(४)

आज नयनोंमें भरा उत्साह है ;
आज उरमें एक पुलकित चाह है ;
आज श्वासोंमें उमड़कर बह रहा
प्रेमका स्वच्छन्द मुक्त प्रवाह है ;
डूब जायें देवि, हम-तुम एक हो !
आज मनसिजका प्रथम अभिषेक हो !

- ६ -

(१)
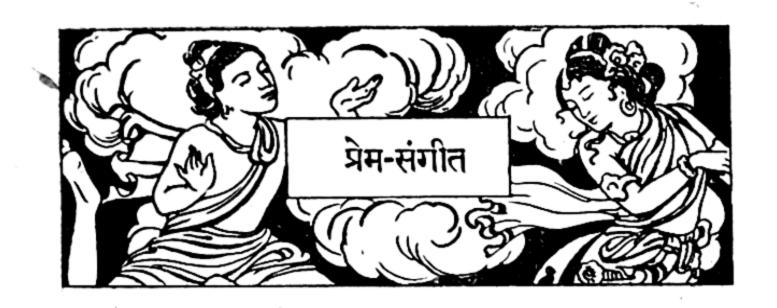
यह तनमयताकी बेला है,

यह है सँयोगकी रात प्रिये !

अधरोंसे कह लें आज अधर

जो भरकर अपनी बात प्रिये !

सुखसे सुरभित इन श्वासोंमें

कितना मधुमय उच्छ्वास भरा !

इन अलस अधखुली आँखोंमें

कितना मादक उल्लास भरा !

प्राणोंका होगा आज मिलन,

कम्पित हैं पुलकित गात प्रिये !

तुम सम्मोहिन, मैं विमुध स्वप्न

यह है सँयोगकी रात प्रिये !
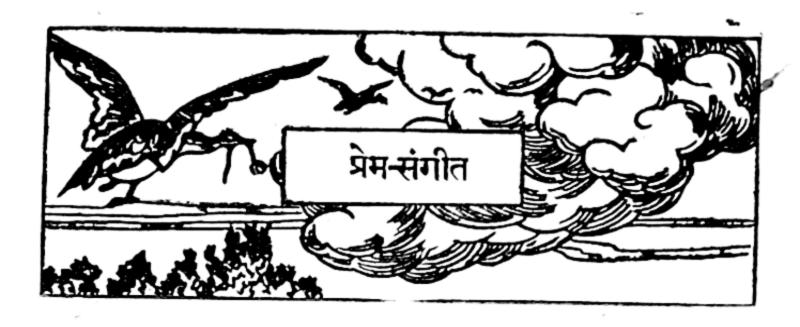
(२)

है हमें बहानेको आई
यह रसकी एक हिलोर प्रिये !
शाश्वत असीममें चलना है
निज सीमाके उस ओर प्रिये !

—उस ओर, जहाँ उन्मत्त प्रणय
है लोक - लाजको छोड़ चुका ;
—उस ओर, जहाँ स्वच्छन्द समय
सुध-बुधके बन्धन तोड़ चुका !

यह पल असीम, यह पल अखण्ड,
इस पलका ओर-न-छोर प्रिये !
तुम चंचल गति, मैं हूँ प्रसार,
यह रसकी एक हिलोर प्रिये !

(३)

तुम आदि-प्रकृति, मैं आदि-पुरुष,
निशि-बेला शून्य अथाह प्रिये!
तुम रतिरत, मैं मनसिज सकाम,
यह अन्धकार है चाह प्रिये!

हम-तुम मिल करके चलो सृजें
सुखका अपना संसार यहाँ;
क्रीड़ाके शत-शत रंगोंमें
हो अपना ही अभिसार यहाँ।

ढक ले पृथ्वी, ढक ले अम्बर
जीवनका मुक्त प्रवाह प्रिये!
तुम अक्षय छवि, मैं अमिट साध,
यह अन्धकार है चाह प्रिये!

प्रेम-सगीत

(४)

प्रतिपल धुँधला पड़ रहा यहाँ
पर आगत और अतीत प्रिये !
कर रहा विमोहित आ हमें
निज प्राणोंका संगीत प्रिये !

कुछ मान-भरी, कुछ भ्रमित, चकित
करती है अभिलाषा नर्तन ;
रचकर अपना असीम उसमें
लय होता जाता है जीवन ।

कल—एक विकल कल्पना व्यर्थ,
कल—यहाँ चुका है बीत प्रिये !
तुम हो, मैं हूँ, है वर्तमान,
है प्राणों का संगीत प्रिये !

- १० -

कल तुम सपनेमें आई
सकुची - सी, मुरझाई - सी,
मेरी आकुल पीड़ामें
सिहरी - सी, कुम्हलाई - सी,
कल तुम रो दी थीं, अब तक
मेरे कपोल भीगे हैं;
कल मैंने तुममें, देखी
अपनी ही परछाईं - सी ! १

मैं भूल रहा था तुमको
अपनेको स्वयम् भुलाकर,
मैं मिटा रहा था निजको
अपनेको स्वयम् मिटाकर,
किस व्यथा-सिक्त जागृतिका
वरदान दे गईं मुझको;
तुम एक शाप - सी मेरी
सुख की तन्द्रा में आकर ? २

प्रेम-संगीत

क्या सह न सकीं तुम मेरे
हँस देनेका पागलपन ?
या भार बन गया तुमको
मेरी पशुताका क्रन्दन ?

सच कहना मेरी रानी !
तुम क्यों बरबस खिंच आईं ?

था करुणाका आकर्षण ?
अथवा ममताका बन्धन ? ३
ऐ मुझे मिटानेवाली !
मिटकर मिटनेको भूलो !
तुम अपने सुखमें भूलो,
तुम मेरे दुखको भूलो,

क्यों रोती हो—मिटना ही
है एक अन्त बननेका !

है प्रेम भूल सपनेकी
उस सुख-सपनेको भूलो ! ४

- ११ -

(१)

अब असह प्रतीक्षा हुई सुमुखि!
अब असह तुम्हारा मौन हुआ ;
जगके स्वरमें तुम भी लिख दो—
इस जगमें किसका कौन हुआ ?

रोकर तुमने मुझको बाँधा,
हँसकर मुझको स्वाधीन करो !
अपनी सीमा मुझसे लेकर
तुम मुझको सीमाहीन करो !

मैं किस-किसका बन चुका किन्तु
फिर भी मेरा कब कौन हुआ ?
विश्वासोंपर अन्तिम प्रहार
यह असह तुम्हारा मौन हुआ ।

(२)

धुँधले-से नयनोंमें लेकर
अपनी धुँधली-सी चाह प्रिये !
मैं प्रतिपल देखा करता हूँ
बस दो शब्दोंकी राह प्रिये।

कह-कह जाते हैं बार-बार
ये उरके शत-शत घाव यहाँ ;
मिटना बननेके साथ लगा,
जीवन है एक अभाव यहाँ !

मेरे सूखे - से होठोंपर
बन असफलताकी आह प्रिये !
प्राणोंसे खेला करती है
उन दो शब्दोंकी चाह प्रिये !

(१)
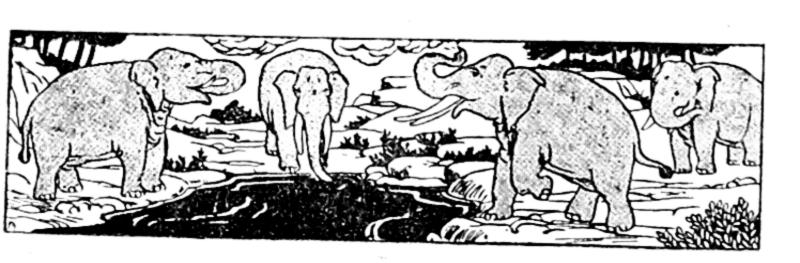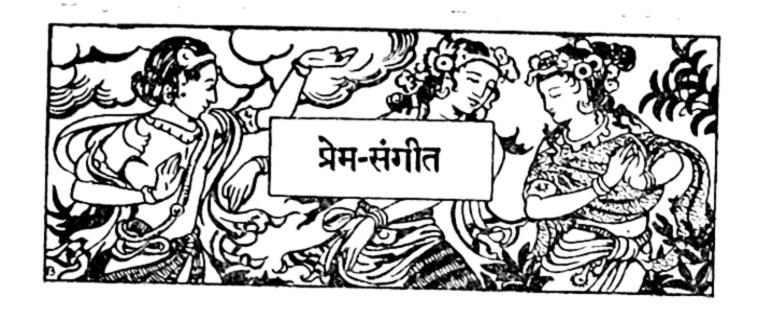
कल मैंने तुमको पाया था
निज जीवनमें उन्माद लिये।
खोये देता हूँ आज तुम्हें
मैं एक कसकती याद लिये।

किसने कब पाया हाय यहाँ!
पाना है अपने को खोना;
वह मानवका अधिकार जिसे
यह जग कह देता है 'रोना'।

आशाका और निराशाका
अपवाद लिये, अवसाद लिये;
मैं तिल-तिल मिटता रहता हूँ
बस एक तुम्हारी याद लिये।

प्रेम-संगीत

(४)

मेरी अभिलाषाओंपर है
असफलताका परिधान प्रिये !
फिर यहाँ किसका दोष कहाँ
कुछ विधिका यही विधान प्रिये !

जब-जब मैंने विश्वास किया
तब-तब भावी प्रतिकूल हुई !
बस एक बार इतना लिख दो—
मुझसे छोटी-सी भूल हुई !

यह टेढ़ा - टेढ़ा लोक-ज्ञान
मैं युग - युगका नादान प्रिये !
कुछ कठिन प्रेमकी राह और
कुछ विधिका कठिन विधान प्रिये !

- १२ -

(१)
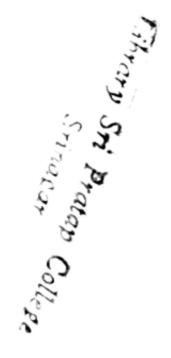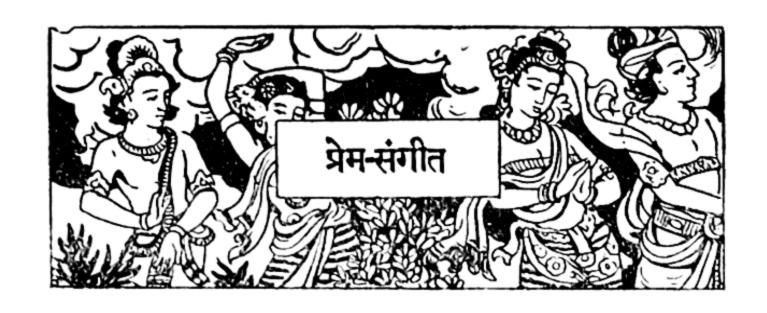
किस तरह भुला दूँ आज हाय
कलकी ही तो है बात प्रिये !

जब श्वासोंका सौरभ पीकर
मदमाती साँसें लहर उठी,
जब उरके स्पन्दनसे पुलकित
उरकी तनमयता सिहर उठी ;

मैं दीवाना तो ढूँढ़ रहा
हूँ वह सपनेकी रात प्रिये !
किस तरह भुला दूँ आज हाय
कलकी ही तो है बात प्रिये !

(२)

किस तरह मिटा दूँ आज हाय
अपनेपनकी भी याद प्रिये ?

जब सुमुखि तुम्हारी आँखोंमें
साकार हृदयकी प्यास बनी,
जब छाया-सी अनुभूति विकल
तुममें मिलकर विश्वास बनी ;

वह पल-भरका अस्तित्व बना
अब युग-युगका उन्माद प्रिये !
किस तरह मिटा दूँ आज हाय
अपनेपनकी भी याद प्रिये !

१३

बस इतना—अब चलना होगा
फिर अपनी-अपनी राह हमें !
कल ले आई थी खींच, आज
ले चलीं खींचकर चाह हमें !

    तुम जान न पाईं मुझे, और
    तुम मेरे लिए पहेली थीं ;

पर इसका दुख क्या ? मिल न सकी
प्रिय जब अपनी ही थाह हमें । १

तुम मुझे भिखारी समझे थीं,
मैंने समझा अधिकार मुझे !
तुम आत्म-समर्पणसे सिहरीं,
था बना वही तो प्यार मुझे !

    तुम लोक-लाजकी चेरी थीं,
    मैं अपना ही दीवाना था ;

ले चलीं पराजय तुम हँसकर,
दे चलीं विजयका भार मुझे ! २

सुखसे वंचित कर गया सुमुखि,
वह अपना ही अभिमान तुम्हें !
अभिशाप बन गया अपना ही
अपनी ममताका ज्ञान तुम्हें !

तुम बुरा न मानो, सच कह दूँ,
तुम समझ न पाईं जीवनको ;

जन-रवके स्वरमें भूल गया
अपने प्राणोंका गान तुम्हें ! ३
था प्रेम किया हमने तुमने,
इतना कर लेना याद प्रिये !
बस फिर कर देना वहीं क्षमा
यह पल-भरका उन्माद प्रिये !

फिर मिलना होगा या कि नहीं
हँसकर तो दे लो आज विदा ;

तुम जहाँ रहो, आबाद रहो,
यह मेरा आशीर्वाद प्रिये ! ४

- १४ -

(१)
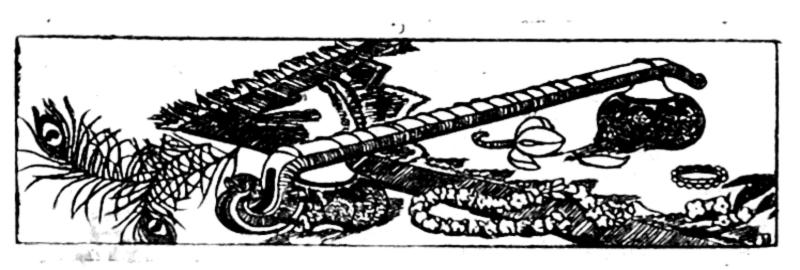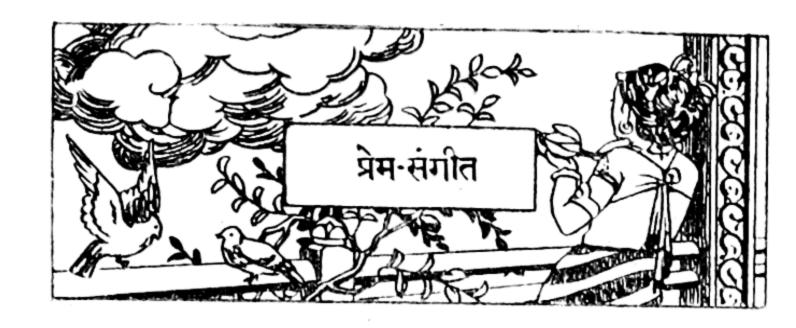
तुम सुधि बन-बनकर बार-बार
क्यों कर जाती हो प्यार मुझे ?
फिर विस्मृति बन तनमयताका
दे जाती हो उपहार मुझे !
मैं करके पीड़ाको विलीन
पीड़ामें स्वयम् विलीन हुआ ;
अब असह बन गया देवि, तुम्हारी अनुकम्पाका भार मुझे ?

(२)

माना वह केवल सपना था,
पर कितना सुन्दर सपना था !
जब मैं अपना था, और सुमुखि !
तुम अपनी थीं, जग अपना था !
जिसको समझा था प्यार, वही
अधिकार बना पागलपनका
अब मिटा रहा प्रतिपल, तिल-तिल, मेरा निर्मित संसार मुझे !

- १५ -

(१)
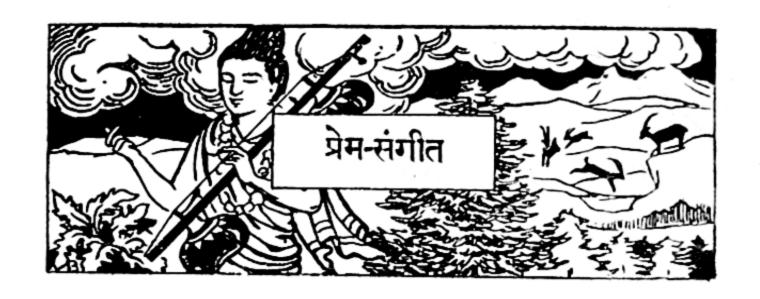
कल सहसा यह सन्देश मिला
सूने-से युगके बाद मुझे—
कुछ रोकर, कुछ क्रोधित होकर
तुम कर लेती हो याद मुझे !

गिरनेकी गतिमें मैं मिलकर
गतिमय होकर गतिहीन हुआ !
एकाकीपनसे आया था,
अब सूनेपनमें लीन हुआ !

यह ममताका वरदान सुमुखि !
है अब केवल अपवाद मुझे !
मैं तो अपनेको भूल रहा,
तुम कर लेती हो याद मुझे !

(२)

पुलकित सपनोंका क्रय करने
मैं आया अपने प्राणोंसे ;
लेकर अपनी कोमलताको
मैं टकराया पाषाणोंसे !

मिट - मिटकर मैंने देखा है
मिट जानेवाला प्यार यहाँ ;
सुकुमार भावनाको अपनी
बन जाते देखा भार यहाँ ;

उत्तप्त मरुस्थल बना चुका
विस्मृतिका विषम विषाद मुझे ;
किस आशासे छविकी प्रतिमा !
तुम कर लेती हो याद मुझे ?

(३)
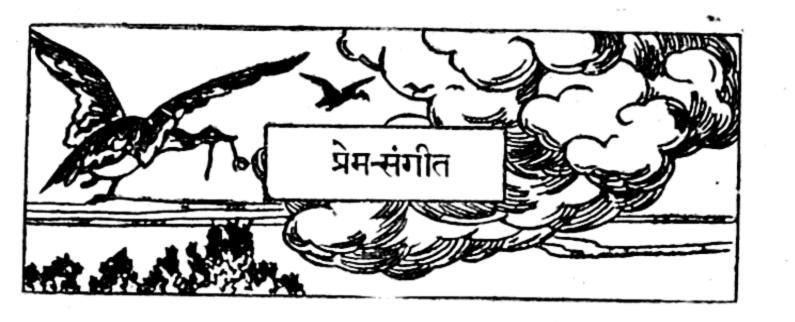
हँस-हँसकर कबसे मसल रहा
हूँ मैं अपने विश्वासोंको ;
पागल बनकर मैं फेंक रहा
हूँ कबसे उलटे पाँसोंको !

पशुतासे तिल-तिल हार रहा
हूँ मानवताका दाँव अरे !
निर्दय व्यंगोंमें बदल रहे
मेरे ये पल अनुराग - भरे !

बन गया एक अस्तित्व अमिट
मिट जानेका अवसाद मुझे ;
फिर किस अभिलाषासे रूपसि !
तुम कर लेती हो याद मुझे ?

(४)

यह अपना-अपना भाग्य, मिला
अभिशाप मुझे, वरदान तुम्हें !
जगकी लघुताका ज्ञान मुझे ;
अपनी गुरुताका ज्ञान तुम्हें !

जिस विधिने था संयोग रचा,
उसने ही रचा वियोग प्रिये !
मुझको रोनेका रोग मिला,
तुमको हँसनेका भोग प्रिये !

सुखकी तन्मयता तुम्हें मिली,
पीड़ाका मिला प्रमाद मुझे !
फिर एक कसक बनकर अब क्यों
तुम कर लेती हो याद मुझे ?

- १६ -

(१)

प्रति पल नीचे-नीचे फिर भी
इतनेसे सन्तोष नहीं ;
सच कहता हूँ, कसक नहीं है
और किसीपर रोष नहीं ;

एक मूर्त्ति थी खिंची हृदयपर,
उसे मिटाना चाहा था ;

किन्तु हृदय ही हाय मिट गया
इसमें मेरा दोष नहीं !

उसे भुलाने चला, स्वयम् ही
भूल गया मैं अपनेको ;
निज अस्तित्व बना रखा था
उस पल - भरके सपनेको !

(२)

बसी हुई दुनियाकी तहमें
है दीवानों की बस्ती ;
जहाँ निराशा मिलकर प्राणों
में बन जाती है मस्ती ;

होठोंपर मुस्कान नहीं है,
चमक नहीं है आँखोंमें ;

छलक पड़ा करती है केवल
कभी - कभी मेरी हस्ती !

आज हँसना सीख गया हूँ
रक्त पिलाकर रोनेको,
मिटकर पाना सीख गया हूँ
मैं अपने ही खोनेको ।

प्रेम-संगीत

(१)

लुटा चुका हूँ अपना सब-कुछ,
बना आज लेनेवाला,
शेष हलाहल रहा, बह गई
आँखोंसे मेरी हाला ;

जीवनका अभिशाप लिए हूँ,
पाप लिए हूँ यौवनका ;
और पहन रक्खी है मैंने
असफलताकी जयमाला ।

अभिलाषाकी राख उड़ाता
चलता हूँ मस्ताना मैं ;
ज्ञानी जगसे खेल रहा हूँ
अज्ञानी दीवाना मैं ।

*　　　*　　　*　　　*

लेना होगा, अरे व्यर्थ है
सुख-दुखकी पहचान मुझे !
करना होगा, अरे व्यर्थ है
भले - बुरेका ज्ञान मुझे !

मुक्त हो चुका सब-कुछ खोकर
कैसा भय, चिन्ता कैसी ?

अपने इस विनष्ट वैभवपर
है कितना अभिमान मुझे !

- १७ -
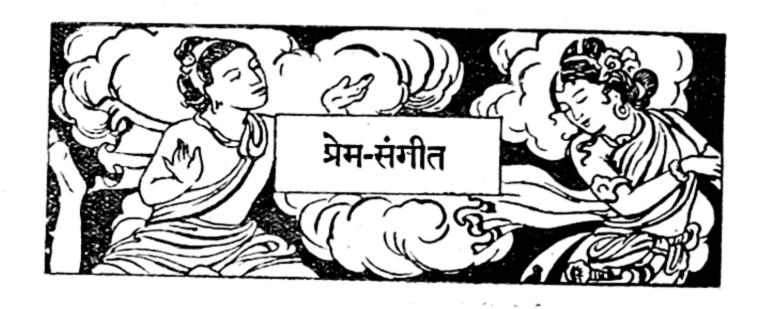
(१)

मैं एकाकी—है मार्ग अगम,
है अन्तहीन चलते जाना ;
नभमें व्यापकता सँदेश,
क्षितिमें सीमासे टकराना ;
उजले दिन, काली रातोंमें,
लय हो जाते हास-रुदन ;
धुँधली बनकर इन आँखोंने
केवल सूनापन पहचाना ।
है उस जीवनका बोझ असह,
मैं निर्बलतासे चूर प्रिये !
उर शंकित है, पग डगमग हैं,
तुम मुझसे कितनी दूर प्रिये !

(२)
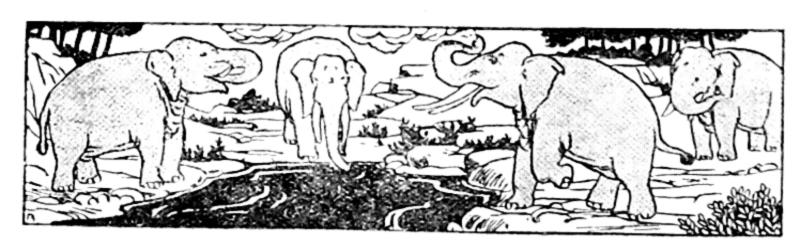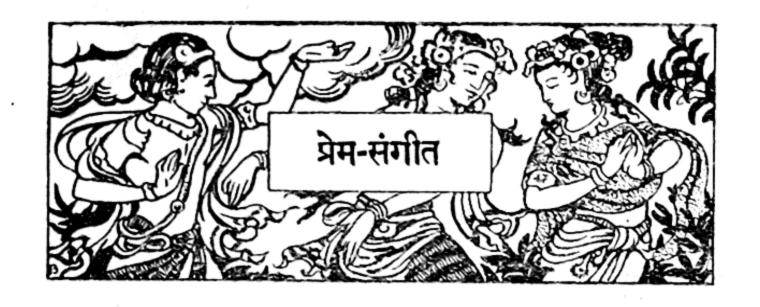
लेकर अक्षय विश्वास, अरे !
उस दिन जब पत्थरके दिलमें
मैंने जागृतिका पाठ पढ़ा
सोनेवालोंकी महफिलमें ;

'भेदन करना है अन्धकार !'
तब पागल-सा मैं बोल उठा ;

कब सोचा था, डिग जाऊँगा
मैं बस पहिली ही मंजिलमें ?

उस पार !—अरे उस पार कहाँ ?
है अन्तहीन इस पार प्रिये !
पैरोंमें ममताका बन्धन,
सिरपर वियोगका भार प्रिये !

(३)
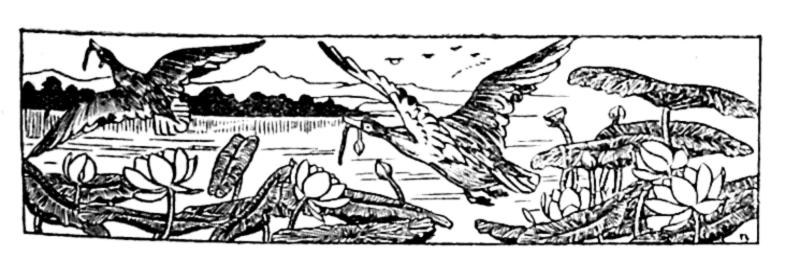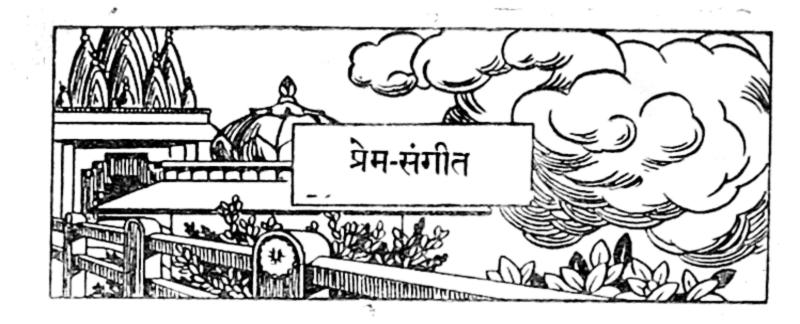
अब असह अबल अभिलाषाका
है सबल नियतिसे संघर्षण ;
आगे बढ़नेका अमिट नियम,
पग पीछे पड़ते हैं प्रतिक्षण ;

पर यदि सम्भव ही हो सकता,
केवल पल-भर पीछे हटना—

तो बन जाता वरदान अमर,
यह सबल तुम्हारा आकर्षण !

मैं एक दयाका पात्र अरे,
मैं नहीं रंच स्वाधीन प्रिये !
हो गया विवशताको गति
बँधकर हूँ मैं गतिहीन प्रिये !

(४)

शशि एकाकी मिटता रहता,
रवि एकाकी जलता रहता,
मरु एकाकी आहें भरता,
हिम एकाकी गलता रहता ;

कोयल एकाकी रो देती,
कलि एकाकी मुरझा जाती,

एकाकीपन में बनने का,
मिटनेका क्रम चलता रहता !

एकाकीपन ही अपनापन,
मैं अपनेसे मजबूर प्रिये !
उर शंकित है, पग डगमग हैं,
तुम होती जाती दूर प्रिये !

- १८ -

हाँ, प्रेम किया है, प्रेम किया है मैंने,
वरदान समझ अभिशाप लिया है मैंने ;
अपनी ममताको स्वयं डुबाकर उसमें,
वर्जित मदिराको देवी, पिया है मैंने ।
मैं दीवाना तो भूल चुका अपनेको ;
मैं ढूँढ़ रहा हूँ उस खोये सपनेको ।

छायाको छाया बनकर मैंने देखा,
खिंच गई हृदयपर वहीं कसककी रेखा ;
मैं मिटा-मिटाकर स्वयं मिटा जाता हूँ,
पर अमिट बन गया वह विधिनाका लेखा ।
देकर मैं अपनी चाह आह लाया हूँ ;
प्राणोंकी बाजी हाय हार आया हूँ ।

हैं कसक रहीं अब उरमें बीती बातें,
घिर आती हैं पीड़ा बन खोई रातें ;
मेरे जीवनमें धुँधला - सा सूनापन,
है उमड़ पड़ा बन आँसूकी बरसातें ।

प्रेम-संगीत

दिन जलता है, रजनी आहें भरती है ;
मुझसे मेरी लघुता खेला करती है ।

वे दिन बीते जब मैं भी था अभिमानी,
भ्रूपातोंमें उठता था आँधी - पानी ;
अब तो मेरा धन स्मृतियोंका बन्धन है,
प्रत्येक साँस है मेरी करुण - कहानी ।

असमर्थ बन गया लो सहसा अधिकारी ;
देनेवाला बन गया नितान्त भिखारी !

लेकर मस्तकपर अपनी हीन पराजय,
मैं करता हूँ असफलताओंका संचय ;
तुम एक बार तो मुझे देखकर हँस लो,
तब था पानेका, अब खोनेका अभिनय ।

मिटने ही को तो मैं बनकर आया हूँ ;
मैं लुटा रहा हूँ, जो कुछ मैं लाया हूँ ।

- १९ -

पतझड़के पीछे पत्तोंने
प्रिय देखा था मधुमास कभी ;
जो कहलाता है आज रुदन,
वह कहलाया था हास कभी ;
आँखोंके मोती बन - बनकर
जो टूट चुके हैं अभी-अभी—
सच कहता हूँ, उन सपनोंमें
भी था मुझको विश्वास कभी। १

आलोक दिया हँसकर प्रातः
अस्ताचल पर के दिनकर ने ;
जल बरसाया था आज अनल
बरसाने वाले अम्बरने ;
जिसको सुनकर भय - शंकासे
भावुक जग उठता काँप यहाँ ;
सच कहता हूँ कितने रस-मय
संगीत रचे मेरे स्वरने। २

प्रेम-संगीत
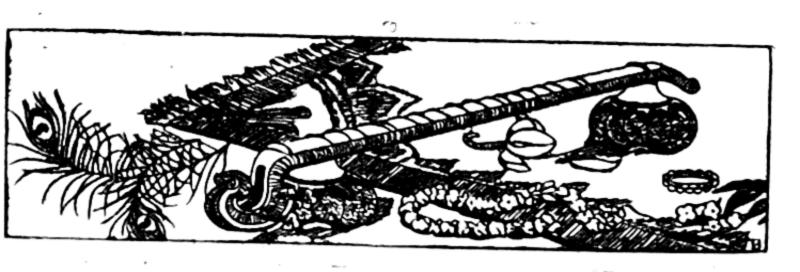
तुम हो जाती हो सजल नयन
लखकर यह पागलपन मेरा ;
मैं हँस देता हूँ यह कहकर
'लो टूट चुका बन्धन मेरा !'

ये ज्ञान और भ्रमकी बातें—
तुम क्या जानो, मैं क्या जानूँ ?

है एक विवशतासे प्रेरित
जीवन सबका, जीवन मेरा ! ३

कितने ही रससे भरे हृदय,
कितने ही उन्मद-मदिर-नयन,
संसृतिने बेसुध यहाँ रचे
कितने ही कोमल आलिङ्गन ;

फिर एक अकेली तुम ही क्यों
मेरे जीवनमें भार बनी ?

जिसने तोड़ा प्रिय उसने ही
था दिया प्रेमका यह बन्धन ! ४

प्रेम-संगीत

कब तुमने मेरे मानसमें
था स्पन्दनका संचार किया ?
कब मैंने प्राण तुम्हारा निज
प्राणोंसे था अभिसार किया ?

हम-तुमको कोई और यहाँ
ले आया - जाया करता है ;

मैं पूछ रहा हूँ आज अरे
किसने कब किससे प्यार किया ? ५

जिस सागरसे मधु निकला है,
विष भी था उसके अन्तरमें ;
प्राणोंकी व्याकुल हूक - भरी
कोयलके उस पंचम स्वरमें ;

जिसको जग मिटना कहता है,
उसमें ही बननेका क्रम है ;

तुम क्या जानो कितना वैभव
है मेरे इस उजड़े घरमें ? ६

मेरी आँखोंकी दो बूँदों
में लहरें उठतीं लहर-लहर ;
मेरी सूनी-सी आहोंमें
अम्बर उठता है मौन सिहर ;

निजमें लयकर ब्रह्माण्ड निखिल
मैं एकाकी बन चुका यहाँ ;

संसृतिका युग बन चुका अरे
मेरे वियोगका प्रथम प्रहर । ७

कल तक जो विवश तुम्हारा था,
वह आज स्वयम् हूँ मैं अपना ;
सीमाका बन्धन जो कि बना,
मैं तोड़ चुका हूँ वह सपना ;

पैरोंपर गतिके अंगारे,
सरपर जीवनकी ज्वाला है ;

वह एक हँसीका खेल जिसे
तुम रोकर कह देती 'तपना !' ८

प्रेम-संगीत
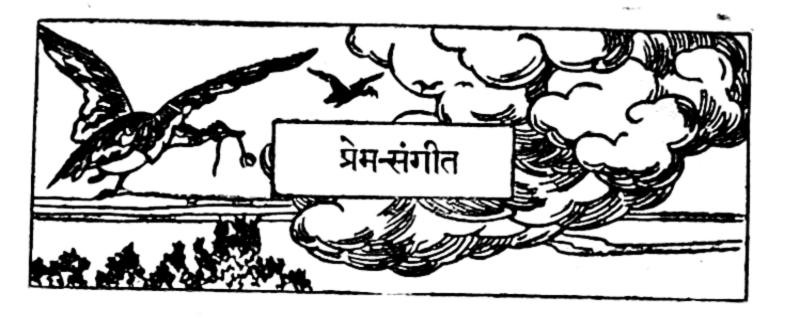
मैं बढ़ता जाता हूँ प्रतिपल,
गति है नीचे, गति है ऊपर ;
भ्रमती ही रहती है पृथ्वी,
भ्रमता ही रहता है अम्बर !
इस भ्रममें भ्रमकर ही भ्रमके
जगमें मैंने पाया तुमको ;
जग नश्वर है, तुम नश्वर हो,
बस मैं हूँ केवल एक अमर ! १

- २८ -

हम दीवानोंकी क्या हस्ती,
हैं आज यहाँ, कल वहाँ चले ;
मस्तीका आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते जहाँ चले ;
आए बनकर उल्लास अभी
आँसू बनकर बह चले अभी ;
सब कहते ही रह गये, अरे
तुम कैसे आए, कहाँ चले ? १

किस ओर चले ?–यह मत पूछो,
चलना है, बस इसलिए चले ;
जगसे उसका कुछ लिए चले,
जगको अपना कुछ दिए चले ;
दो बात कहीं, दो बात सुनीं ।
कुछ हँसे और फिर कुछ रोए ।
छककर सुख-दुखके घूँटोंको
हम एक भावसे पिए चले । २

हम भिखमंगोंकी दुनियामें
स्वच्छन्द लुटाकर प्यार चले ;
हम एक निशानी-सी उरपर
ले असफलताका भार चले ;

हम मान-रहित, अपमान-रहित
जी भरकर खुलकर खेल चुके ;

हम हँसते-हँसते आज यहाँ
प्राणोंकी बाजी हार चले । ३

हम भला-बुरा सब भूल चुके,
नत-मस्तक हो मुख मोड़ चले ;
अभिशाप उठाकर होठोंपर
वरदान दृगोंसे छोड़ चले ;

ब अपना और पराया क्या ?
आबाद रहें रुकनेवाले !

हम स्वयम् बँधे थे, और स्वयम्
हम अपने बन्धन तोड़ चले ! ४